निवेदन

मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता है। अपने को सुखी और दुखी बनाना उसके हाथ में है। अंगरेज़ कवि शेक्सपियर ने ठीक ही कहा है कि "संसार में न तो कोई वस्तु अच्छी है और न कोई वस्तु बुरी है; किसी वस्तु को अच्छी या बुरी मनुष्य के विचार बनाते हैं।"

वर्तमान पुस्तक 'मनुष्य ही मन, शरीर और परिस्थितियों का राजा है' जेम्स एलेन की प्रसिद्ध पुस्तक 'Man · King of Mind, Body and Circumstances' का स्वच्छन्द हिन्दी भाषान्तर है। इसमें विद्वान लेखक ने बताया है कि किस प्रकार मनुष्य अपने मन और विचारों को अपने आधीन करके अपना जीवन सुखी बना सकता है। उसके मत में मनुष्य के चारों ओर सुख ही सुख है, दुख का नाम भी नहीं है।

आशा है जेम्स एलेन की 'मन की अपार शक्ति, 'नर से नारायण', 'दैनिक ध्यान' आदि छात्रहितकारी पुस्तकमाला प्रयाग द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की तरह इस पुस्तक का भी काफी प्रचार होगा और उसके अनुसार चलकर हमारे देशवासी विशेषकर हमारे देश के होनहार एवं युवक विद्यार्थी अपने जीवन को ऊँचा और सुखी बना सकेंगे।

दीपावली १६५६ केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

ष्य ही मन, शरीर और परिस्थितियों का राजा है

१—विचारों की भीतरी दुनिया

मनुष्य ही अपने को सुखी और दुखी बनाता है। अपने
ख और दुख को कायम रखने वाला भी वही है। सुख और
ख मनुष्य को बाहर से नहीं मिलते। ये अपने मन के ही
तर भरे हुए हैं। कोई देवता अथवा दानव भी हमें सुखी
और दुखी नहीं बना सकता। परिस्थितियों का भी कोई असर
मारे सुख और दुख पर नहीं पड़ता। वास्तव में सुख और दुख
हमारे विचारों से ही उत्पन्न होते हैं। पहले किसी काम को
करने का विचार हमारे मन में पैदा होता है और फिर हम उस
काम को करना शुरू करते हैं। करने के बाद तब हमको उसका
अच्छा या बुरा फल मिलता है। यदि हमारे विचार अच्छे हुये
और उनके अनुसार हमने कड़ाई के साथ काम किया तो हमको
सुख मिलता है और यदि हमारे विचार गन्दे हुये और हमने
लापरवाही के साथ काम किया तो हमें दुख मिलता है। नतीजा
इसका यह निकला कि यदि हम दुखी नहीं रहना चाहते तो

ड़ेगा और उसके चरित्र में अधिक सुन्दरता पैदा होगी। साथ उसे इस बात का ज्ञान भी होगा कि जिस सीमा के अन्दर काम कर रहा था उससे दुनिया कहीं बड़ी है और ज्ञान प्राप्त करने का क्षेत्र भी बहुत बड़ा है।

मनुष्य अपने अच्छे और बुरे विचारों के अनुरूप अच्छी और बुरी अवस्था में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। यदि उनके मन में बुरे विचार भरे हुये हैं तो उनकी दुनिया दुखद और संकीर्ण होती है और यदि उनके मन में अच्छे विचार भरे हुये हैं तो उनकी दुनिया सुखद और विस्तीर्ण होती है। मनुष्य की अगल-बगल की दुनिया में उसके विचारों का ही प्रभाव पड़ा करता है।

एक ऐसे मनुष्य को लीजिये जो स्वार्थी और लोभी है और दूसरों से ईर्षा करता है। उसकी दुनिया बड़ी छोटी होती है, उसके साथी भी नीच स्वभाव के होते हैं और उसे किसी चीज में आनन्द नहीं मिलता। अपने में बड़प्पन न होने के कारण उसे कहीं भी बड़प्पन नहीं दिखलाई पड़ता, स्वयं निकम्मा होने के कारण उसे किसी प्राणी में अच्छाई नहीं दिखलाई पड़ती। और कहाँ तक कहें उसका देवता भी लोभी होता है जिसे घूस देकर वह अपना काम करवाने का दम भरता है। जैसा नीच और स्वार्थी वह स्वयं होता है वैसा ही नीच और स्वार्थी वह

दूसरों को भी समझता है। ऊँचे से ऊँचे निस्वार्थ कामों में भी उसे बुराई ही दिखलाई पड़ती है।

अब एक ऐसे मनुष्य को लीजिये जो स्वार्थी नहीं है, जो बड़ा उदार है और जिसके विचार बड़े ऊँचे हैं। उसकी दुनिया कितनी विचित्र और सुन्दर होती है। उसे सब प्राणियों में एक भिन्न प्रकार की अच्छाई दिखलाई पड़ती है। वह सब मनुष्यों को ईमानदार समझता है और सब मनुष्य उसे ईमानदार समझते हैं। उसके सामने आते ही नीच से नीच मनुष्य में भी उसी की तरह उदारता के भाव पैदा हो जाते हैं। पहले तो उसकी सूरत देखकर वह घबड़ा जाता है किन्तु धीरे-धीरे वह होश में आता है और अपने में बड़े ही आनन्द और सुख का अनुभव करता है।

इन दो प्रकृति के मनुष्य यद्यपि पास-पास रहते हैं किन्तु उनकी दुनिया भिन्न-भिन्न होती है और उनके काम करने के सिद्धान्त भी भिन्न-भिन्न होते हैं। उनके काम करने का ढंग भी अलग-अलग होता है और उनकी नैतिकता भी एक दूसरे से नहीं मिलती। वे एक ही वस्तु को अलग-अलग निगाहों से देखते हैं। उनके विचार एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होते हैं और दो अलग-अलग दायरों की तरह उनका आपस में मेल नहीं खाता। एक तो नरक में रहता है और दूसरा स्वर्ग में रहता

ओर जिस प्रकार वे जीवन काल में अलग-अलग रहते हैं
सी प्रकार मरने पर भी वे अलग-अलग लोकों में जाते हैं।
क की दुनिया में चोर ही चोर दिखलाई पड़ते हैं और दूसरे
ी इस दुनिया में देवता ही देवता दिखलाई पड़ते हैं, एक
सरों को लूटना है और ठगता है इसलिये दूसरे उसे लूट न लें
ौर ठग न लें इस डर से वह अपने पास उनसे बचने के
लिये हमेशा एक बन्दूक रखता है। दूसरा लोगों से प्रेम
करता है इसलिये उन लोगों की दावत के लिये उसका दरवाजा
हमेशा खुला रहता है। उसके यहाँ बुद्धिमान और ईमानदार
लोगों का जमघट रहता है। उसके सब दोस्त अत्यन्त चरित्रवान
होते हैं। वे सब उसी में घुल-मिल जाते हैं। उसके साथ रहने
के कारण वे भी सब उसी विचार के हो जाते हैं। उसके हृदय
में प्रेम उमड़ता रहता है इसलिये उसके साथी उससे दस गुना
प्रेम करते हैं और हमेशा उसका आदर करते हैं।

मनुष्य समाज में इतनी भिन्नता क्यों होती है? क्योंकि
मनुष्यों के विचार और उनके रहन-सहन भिन्न-भिन्न प्रकार के
होते हैं जिनका प्रभाव मनुष्य समाज पर पड़ता है। नीच प्रकृति
वाले समाज की भिन्नता की निन्दा भले ही करें किन्तु उनकी
निन्दा से समाज की भिन्नता दूर नहीं हो सकती। जिनके स्वभाव
एक दूसरे से भिन्न हैं और जिनके जीवन के सिद्धान्त भी एक

दूसरे से भिन्न हैं उनके विचारों को एक ही धरातल पर मन्द रूप से लाने का कोई भी उपाय नहीं है। समाज के नियमों के मानने वाले और समाज के नियमों की अवहेलना करने वाले एक दूसरे से स्वभावतः भिन्न होते हैं। घृणा अथवा अभिनय के कारण से एक दूसरे से भिन्न नहीं होते। वास्तव में उनके अलग रहने के कारण उनके विचार और उनके रहन-सहन हैं। दुष्ट प्रकृति वाले सज्जनों के साथ रह ही नहीं सकते क्योंकि उनके बीच में स्वभाव विचारों की एक मजबूत दीवार खड़ी रहती है जिसे दुष्ट प्रकृति वाले धीरे-धीरे हटा सकते हैं किन्तु अपनी नीच प्रकृति के बल पर उसके पार नहीं जा सकते। स्वर्ग की बादशाहत हिंसा से नहीं मिलती। स्वर्ग की बादशाहत उसे मिला करती है जो उसके सिद्धान्त के अनुसार अपना चरित्र बनाता है। दुष्ट दुष्ट की संगत में रहता है और सज्जन सज्जनों की संगति में रहता है जिनका सम्पर्क ईश्वर से रहता है जिसकी आवाज वे हमेशा अदृश्य रूप से सुना करते हैं। सब मनुष्य शीशे की तरह हैं जो अपने धरातल के अनुसार अपना प्रतिबिम्ब बाहर फेंकते रहते हैं। सब ओर जब हम संसार के मनुष्यों और चीजों की तरफ देखते हैं तो वे शीशे की तरह अपना ही प्रतिबिम्ब बाहर फेंकते हैं और हमें प्रभावित करते हैं।

हरेक मनुष्य अपने सीमित अथवा विस्तृत विचारों की सीम

अनुसार काम करता है और उस सीमा के बाहर किसी वस्तु उसका सम्पर्क नहीं रहता। वह केवल उसी को जानता है जिसके द्वारा उसने अपने को बनाया है। उसकी सीमा जितनी ही संकीर्ण रहेगी उतना ही उसको इस बात का विश्वास होगा कि उसके बाहर अब कोई दूसरी चीज नहीं है। छोटे दिमाग में बड़ी-बड़ी बातें नहीं आ सकतीं। उसमें बड़े लोगों की बड़ी बातें को समझने का सामर्थ्य ही नहीं होता। उसकी समझ में वह लोगों की बातें उस समय आवेंगी जब वह बड़े लोगों की संगत में धीरे धीरे बैठने लगेगा। जो मनुष्य बड़ी संगत में बैठता है वह उस छोटी संगत को जानता है जिसमें वह बैठता था। छोटी संगत का प्रभाव बड़ी संगत में प्रवेश कर जाता है और उसीसे वह सुरक्षित रहता है। जब मनुष्य और भी ऊँची संगत में बैठने लगता है जहाँ उसे बड़े-बड़े बुद्धिमान और चरित्रवान पुरुषों की संगत मिलती है तो उसे मालूम होता है कि जिस समाज में मैं उठता बैठता था उससे भी ऊँची समाज है जिसका उसे अभी तक कोई ज्ञान नहीं था।

जिस प्रकार एक विद्यार्थी का नाम उसकी योग्यता के अनुसार किसी कक्षा में लिखा जाता है उसी प्रकार मनुष्य को उसकी योग्यता के अनुसार वैसी संगत मिलती है। ६वीं कक्षा के पाठ्यक्रम को

प्रथम कक्षा का विद्यार्थी नहीं समझ सकता। वह पाठ्य
उसकी समझ के बाहर होता है। किन्तु धीरे-धीरे जब उ
योग्यता आ जाती है तो वह उसे समझने लगता है।
कक्षाओं को पार करके जब वह ६वीं कक्षा में पहुँचता है
उसके पाठ्यक्रम को वह अच्छी तरह समझ लेता है किन्तु उ
बाद भी योग्यता की एक श्रेणी होती है जिसे अध्यापक ही सम
है, वह विद्यार्थी नहीं समझता। यही दशा मनुष्य के जीवन
होती है। जो *नीच प्रकृति के हैं, जो स्वार्थी हैं, जिन्हें* हमे
अपने मतलब की बात सूझा करती है, वे उन लोगों को
समझ पाते जिनके चरित्र ऊँचे हैं, जो परोपकारी हैं और जि
मन शान्त, गम्भीर और पवित्र होते हैं किन्तु वे अच्छे काम क
ऊँचे विचार रखकर और अपनी नैतिकता की वृद्धि करके उ
ऊँचे स्तर तक पहुँच सकते हैं। इन सब जमायतों के ऊपर
अवतारी उपदेशक होते हैं जो मनुष्यों का कल्याण करने के
जन्म लेते हैं और जिनकी पूजा विभिन्न मतवाले करते हैं
विद्यार्थियों की तरह इन अवतारी उपदेशकों की भी श्रेणियाँ
हैं। उनमें से कुछ ऐसे होते हैं जो महात्मा ईसा के पद तक
पहुँचे होते किन्तु वे अपने चरित्र-बल से जनता की रहनु
... जमाअत में मेज के पास खड़े होकर भ
उपदेशक नहीं बन सकता, सच्चा उपदे

वह है जिसकी पूजा लोग उसकी नैतिकता और सदाचार के कारण करते हैं।

मनुष्य ऊँच और नीच अपने अच्छे और बुरे विचारों से बनता है। इसका और कोई दूसरा कारण नहीं हुआ करता। प्रत्येक मनुष्य अपने विचारों के दायरे में ही उठता बैठता है और वही उसकी दुनिया होती है। उसी दुनिया में उसकी आदतें बनती हैं और उसी से उसे आनन्द मिलता है। वह उसी दुनिया के लोगों में रहता है जिनके स्वभाव उसके स्वभाव से मिलते-जुलते हैं। किन्तु यह जरूरी नहीं है कि वह उसी बुरी अवस्था में पड़ा रहे। वह अपने विचारों को ऊँचा बनाकर ऊपर उठ सकता है। वह बहुत ऊँचे उठकर अपने को सुखी बना सकता है। जब वह ऊँचा उठने का विचार दृढ़तापूर्वक कर लेता है तो वह संकीर्णता और स्वार्थ की जंजीरों को तोड़कर एक ऊँचे क्षेत्र में प्रवेश करता है और अपने जीवन को सुखी बना लेता है।

२—बाहरी चीज़ों का सच्चा स्वरूप

जिस प्रकार विचारों का अपना संसार होता है उसी प्रकार बाहरी चीज़ों के सच्चे स्वरूप का भी अपना संसार होता है। विचारों को समझ कर ही हम बाहरी संसार को समझ सकते हैं, जो चीज बड़ी है उसके भीतर छोटी चीज स्वभावतः बसा करती है। संसार मन का प्रतिबिम्ब है। जो बाहर घटनाएँ हुआ करती हैं उनके आधार विचार होते हैं। परिस्थितियाँ भी विचारों से बनती हैं। सारे वायु-मण्डल का जिसमें मनुष्य रहता है और दूसरे मनुष्यों के उन कामों का जिसमें वह सहयोग देता है सम्बन्ध आवश्यकतानुसार उसके विचारों और उनकी वृद्धि से होता है। मनुष्य जिस संगत में उठता-बैठता है उसका एक अंग होता है। वह अपने साथियों से अलग नहीं रह सकता। वह उनकी मित्रता और कार्यों से प्रभावित होता रहता है। इसके अलावा उस पर उन जरूरी विचारों का भी प्रभाव पड़ता रहता है जिनके द्वारा समाज का काम होता है।

वह बाहरी संसार को अपनी क्षणिक सनक और इच्छाओं के अनुकूल नहीं बना सकता। हाँ, वह अपनी सनक और

इच्छाओं को छोड़ सकता है। वह अपने मन के सुधार से
स प्रकार बदल सकता है कि बाहरी चीज़ें उसे एक भि
कार की दिखलाई पड़ने लगें। वह दूसरों के कामों को अपने
अनुकूल नहीं बना सकता किन्तु वह अपने कामों को इस प्रका
ना सकता है कि दूसरे के कामों से उसके कामों का मिला
होता रहे। जिस परिस्थिति में वह रहता है उसे वह नष्ट न
कर सकता किन्तु वह अपने विचारों को बदल कर और उन
बनकर अपने को उस परिस्थिति के अनुकूल बना सकता है।
परिस्थितियाँ विचारों के पीछे-पीछे चलती हैं। अपने विचा
को बदलो; तो बाहरी संसार सब तुम्हारे अनुकूल होता जायगा
शीशे में अपना मुँह अच्छी तरह दिखलाई पड़े इसके लि
शीशे को बिलकुल साफ होना चाहिये। एक हिलते हुये स्व
शीशे में अपना मुँह देखने से वह बड़ा भद्दा दिखलाई पड़
है। जिसका मन स्थिर नहीं है उसे संसार का एक बहुत
भद्दा रूप दिखलाई पड़ता है; मन को वश में करो और
शान्त रक्खो तो तुमको संसार का एक बहुत ही सुन्दर
आनन्दपूर्ण रूप दिखलाई पड़ेगा।

मनुष्य के भीतर अपार शक्ति भरी है जिसके द्वारा
अपने मन को पवित्र और शक्तिशाली बना सकता है।

…र भी करो तो उसका नतीजा मन पर प्रगट हो ही जाता है। …दि तुमसे लोग प्रसन्नता देखते हैं तो समझते हैं कि …ने अच्छा काम किया है और यदि तुममें उदासीनता देखते … तो समझते हैं कि तुमने बुरा काम किया है। '[illegible] …लक' नाम एक कहानी में यह बात अच्छी तरह समझाई …ई है कि प्रत्येक विचार और प्रत्येक काम का ऐसा असर …ता है जिस पर अच्छी तरह विचार किया जाता है। इसी …लिये यह कहा जाता है कि तुम्हारे कामों का नतीजा दूसरों को नहीं भोगना पड़ता बल्कि सारे समाज अथवा संसार को भोगना पड़ता है। तुम अपने बुरे कामों के नतीजा को होने से बचा नहीं सकते किन्तु जिन विचारों से तुम बुरे काम करने के लिये तैयार होते हो उन विचारों को बदल कर तुम बुरे कामों के नतीजों को रोक जरूर सकते हो। इसीलिये ऐसा कहा जाता है कि मनुष्य का सबसे जरूरी कर्तव्य यह है कि वह अपने विचारों को ऊँचा बनाकर अच्छे-अच्छे काम करे।

यह बात सच है कि तुम होनेवाली बाहरी घटनाओं को नहीं बदल सकते किन्तु अपने को ऐसा बना सकते हो कि उनसे तुमको कोई हानि न पहुँचे। बन्धन और मुक्ति का कारण तुम्हारे भीतर ही मौजूद है। यदि तुम्हें दूसरे नुकसान पहुँचाते हैं तो इसका दोष तुम्हारा ही है। तुम अपने विचार ऐसे बनाते

हो और ऐसे काम करते हो कि दूसरे तुमको नुकसान पहुंचाने के लिये मजबूर हो जाते हैं। तुम्हारे दूषित काम ही तुम्हें नुकसान पहुंचाते हैं। भाग्य का निर्माण अपने ही अच्छे कामों से होता है। जीवन में मधुर और कड़ुआ फल मनुष्य अपने अच्छे अथवा बुरे कामों के बदौलत ही पाता है। ईमानदार आदमी को न तो कोई नुकसान पहुंचा सकता है और न कोई उसका कुछ बिगाड़ सकता है। वह हमेशा निश्चिन्त रहता है, हमेशा शान्त रहता है। वह सबका भला चाहता है इसलिये वह कोई उसको हानि नहीं पहुंचाता। यदि कोई उसे नुकसान पहुंचाने का प्रयत्न करता है तो उल्टे उसी का नुकसान होता है। वह दूसरों के साथ नेकी करता है इसलिये उसे सुख मिलता है और उसके भीतर उत्तरोत्तर शक्ति की वृद्धि होती रहती है। उसके काम की जड़ उसकी नेकनीयती है और उसका फल सुख होता है।

यदि दूसरे किसी मनुष्य की चुगली करते हैं अथवा उसे नुकसान पहुंचाने की कोशिश करते हैं तो इसमें उन लोगों का दोष नहीं होता किन्तु उसमें उस मनुष्य का ही दोष होता है क्योंकि दूसरों के प्रति उसके विचार अच्छे ... मनुष्य आपत्ति और दुःख स्वयं पैदा करता है। वह ... दूषित विचारों और कामों का ...

रा पड़ रहा है। वह समझता है कि मेरे बुरे काम के कारण
ना चरित्र हमेशा के लिये भ्रष्ट हो रहा है किन्तु वास्तव में
ऐसी बात नहीं होती। बुरे काम के कारण मनुष्य को नुकसान
सि पहुँचता है। अपने नुकसान को सोचकर वह घबड़ा जाता
और दुःखी होकर अपनी हानि की पूर्ति करने के लिये घोर
परिश्रम करता है। उससे उसके हानि की पूर्ति होती हुई
दिखलाई पड़ती है किन्तु वास्तव में उसकी पूर्ति नहीं होती,
उसकी अशान्ति का कारण वास्तव में वह काम नहीं होता जिसे
वह करता है बल्कि वे विचार होते हैं जिनसे प्रेरित होकर वह
काम करता है। नेक मनुष्य को उसी काम से कोई परेशानी
नहीं होती। उसे वह यों ही व्यर्थ समझकर टाल जाता है। वह
जानता है कि यह काम दूसरे लोग कर रहे हैं जिनसे उसका
कोई सम्बन्ध नहीं है, वह यह भी जानता है कि ऐसा काम उस
वायुमण्डल से सम्बन्ध रखता है जिसमें उसका कोई हाथ नहीं
है। वह उस काम से अपना कोई सम्बन्ध नहीं जोड़ता। वह
समझता है कि इससे मेरा कोई नुकसान नहीं हो सकता। ऐसे
निकृष्ट कामों को जहाँ से पोषण मिलता है वहाँ से वह अपने
को कहीं ऊँचा रखता है। ऐसे काम उसे किसी प्रकार का
नुकसान उसी प्रकार नहीं पहुँचा सकते जिस प्रकार यदि बच्चे
सूर्य के ऊपर धूल फेंकें तो उस धूल का सूर्य पर कोई प्रभाव

३—आदत की गुलामी और उससे मुक्ति

मनुष्य की जैसी आदत पड़ जाती है वैसा ही वह काम किया करता है। तो क्या फिर वह स्वतन्त्र है? जी हाँ, वह स्वतन्त्र है। मनुष्य ने स्वयं शरीर में जीवन नहीं डाला और न उसके कानून बनाये। ये दोनों तो बाबा आदम के जमाने से चले आ रहे हैं। वह इन कानूनों में फंसा रहता है किन्तु उनको समझ कर उनके अनुसार चल सकता है। जीवन के कानून बनाना मनुष्य के सामर्थ्य के बाहर है। हाँ वह अपने विवेक द्वारा अपनी भलाई के लिये बने हुये कानूनों में से चुनाव कर सकता है। ईश्वर कृत कानूनों में से किसी कानून के लेशमात्र को भी मनुष्य बना नहीं सकता। वे कानून तो अकाट्य होते हैं जो न तो मनुष्य के द्वारा बनाये जा सकते हैं और न नष्ट किये जा सकते हैं। वह उन कानूनों की खोज निकालता है किन्तु उन्हें बना नहीं सकता। उनकी जानकारी न होने से मनुष्य को दुख मिलता है। उनके पालन न करने से वह बन्धन में पड़ता है और मूर्ख कहलाता है। जो चोर देश के कानूनों को तोड़ता है और जो भला आदमी उनका पालन करता है, इन दोनों में से कौन अधिक स्वतन्त्र होता है?

की शक्ति और उसके कानूनों की जानकारी प्राप्त करके उनके अनुकूल चलते हैं और उनका उचित प्रयोग करते हैं उसी प्रकार बुद्धिमान पुरुष ईश्वरकृत नियमों और कानूनों की जानकारी कर लेता है और उनका प्रयोग बुद्धिमानी में करता है। मूर्ख मनुष्य आदत का पक्का गुलाम बन जाता है और बुद्धिमान मनुष्य उसको समझ बूझ कर अपने हित में उसका प्रयोग करता है। मैं फिर भी दोहराता हूँ कि मनुष्य आदत को बना नहीं सकता, वह तो ईश्वर की ओर से बनकर आती है। वह मनमानी उस पर हुकूमत भी नहीं कर सकता। हाँ, उस आदत का विवेक द्वारा ज्ञान प्राप्त करके उसको समझ कर अपने हित में उसका प्रयोग वह कर सकता है। वह वास्तव में खराब मनुष्य है जिसकी विचारधारा अथवा जिसके काम खराब होते हैं और वह वास्तव में नेक मनुष्य है जिसकी विचारधारा और जिसके काम अच्छे होते हैं। खराब मनुष्य भी अपनी आदतों को बदल कर नेक मनुष्य बन सकता है। वह आदत को नहीं बदलता, वह अपने को बदलता है। वह अच्छी आदत के अनुकूल अपने को बना लेता है। वह नरक में डालने वाली भोग-विलास की आदतों को छोड़ सकता है और उनके स्थान में स्वर्ग में पहुँचाने वाली आदतों को डाल सकता है। वह उच्च स्तर पर ले जाने वाली आदतों को पकड़ कर निम्न स्तर पर ले जाने

बुरी आदतों से छुटकारा पा सकता है। आदत मात्र है पर अच्छी यह भी ज्यों की त्यों बनी रहती है। वह उन्हें बदल नहीं सकता किन्तु वह अपने विवेक द्वारा गलत आदतों को छोड़ अच्छी आदतों को अपना सकता है।

किसी बात का बार-बार दोहराने से आदत बनती है। मनुष्य जब बार बार एक ही विचार, एक ही काम और एक ही अनुभव को दोहराता है तो वे उसके आचरण में घुल मिल जाते हैं और उसके जीवन के एक अंग बन जाते हैं। मनुष्य की भीतरी शक्ति स्थिर होती है और मन में जो विचार पैदा होते हैं उनकी शक्ति उन्नति होती रहती है। आज जो एक मनुष्य जैसा देख पड़ता है वैसा वह लाखों विचारों और लाखों कामों की पुनरुक्तियों से बना है। वह जैसा है वैसा बनाकर नहीं गढ़ कर दिया गया है। वह धीरे-धीरे जैसा है वैसा बना है और आगे भी वैसा बन रहा है। उसने अपना वर्तमान चरित्र पहले से सोच समझकर धीरे-धीरे बनाया है। उसने पहले अपने मन का एक काम सोचा। उसे जब वह बार-बार करने लगा तो वह उसकी आदत बन गई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक मनुष्य अपने बराबर होने वाले विचारों और कामों के समूह से बना है। जिन विशिष्ट को वह अपने आप बिना किसी प्रयास के प्रकट करता है

वे बार बार दोहराने से उसे मिले हैं और इसीलिये यह उनको आप से आप दोहराता रहता है। वे एक प्रकार से उसका स्वभाव बन गये हैं। उसे उन विशिष्ट गुणों को प्रकट करने के लिये फिर सोचने अथवा प्रयत्न करके प्राप्त करने की जरूरत नहीं पड़ती। समय पाकर वे इतने दृढ़ हो जाते हैं कि यदि वह उनको छोड़ना भी चाहे तो उन्हें वह छोड़ नहीं सकता। सब प्रकार की आदतें चाहे वे अच्छी हों अथवा बुरी हों इसी तरह से बनती हैं। जब आदतें बुरी बन जाती हैं तो लोग कहने लगते हैं कि यह बुरी आदतों का शिकार हो गया है, उसका दिमाग खराब हो गया है और जब आदतें अच्छी बन जाती हैं तो लोग कहने लगते हैं कि वाह वाह! देखो तो उस मनुष्य का स्वभाव कितना अच्छा है, उसकी आदतें कितनी अच्छी हैं।

सभी मनुष्य अपनी आदतों के आधीन रहते हैं और भविष्य में भी बराबर रहेंगे चाहे वे आदतें अच्छी हों अथवा बुरी हों। यानी वे उन विचारों और कामों से बराबर प्रभावित होते रहेंगे जिनकी पुनरावृत्ति वे अभी तक बराबर करते रहे हैं। यह समझकर बुद्धिमान मनुष्य अच्छी-अच्छी आदतों को अपनाते हैं जिनसे उनको आनन्द, सुख और स्वतन्त्रता मिलती है। यदि वे खराब-खराब आदतों को अपनावें तो उनसे उनको दुख मिलता है और दीनता और गुलामी का सामना करना पड़ता है।

आदत बनने का यह नियम एक ओर तो उस मनुष्य के बन्धन में डाले रहता है जिसकी आदतें बुरी बन गई हैं और दूसरी ओर उस मनुष्य को लाभ पहुँचाता है और बन्धन से मुक्त रखता है जिसने अच्छी आदतें डाल ली। वह अच्छाई के काम बिना किसी प्रयास के आप से आप करता रहता है जिससे उसको जीवन भर बराबर सुख मिलता है। आदतों के द्वारा मनुष्य के जो काम आप से आप होते रहते हैं उनके बारे में लोगों ने यह दोष निकाला है कि मनुष्य एक तरह से पंगु हो जाता है। उसकी न तो अपनी इच्छा कुछ काम करती है और न उसमें अपनी तबीयत से काम करने की कोई स्वतन्त्रता ही रहती है। वे कहते हैं कि मनुष्य जन्म से ही अच्छा या बुरा होता है और प्रकृति के हाथ का एक मूक खिलौना रहता है।

यह बात सच है कि मनुष्य अपने विचारों के हाथों का एक खिलौना बना रहता है, उसमें उन्हीं विचारों की शक्ति काम करती रहती है किन्तु वे विचार अड़यल नहीं होते। यदि वह चाहे तो उन्हें नवीन नवीन दिशाओं की ओर ले जा सकता है। कहने का मतलब यह है कि यदि वह पक्का इरादा कर ले तो वह अपनी आदतों को एकदम बदल सकता है। यह बात ठीक है कि वह एक विशेष चरित्र लेकर पैदा हुआ है जिसके अनेक जन्मों में परिश्रम करके अपने आप बनाया है

आदत बनने का यह नियम एक ओर तो उस मनुष्य के बन्धन में डाले रहता है जिसकी आदतें बुरी बन गई हैं और दूसरी ओर उस मनुष्य को लाभ पहुँचाता है और बन्धन से मुक्त रखता है जिसने अच्छी आदतें डाल ली। वह अच्छाई के काम बिना किसी प्रयास के आप से आप करता रहता है जिससे उसको जीवन भर बराबर सुख मिलता है। आदतों के द्वारा मनुष्य के जो काम आप से आप होते रहते हैं उनके बारे में लोगों ने यह दोष निकाला है कि मनुष्य एक तरह से पंगु हो जाता है। उसकी न तो अपनी इच्छा कुछ काम करती है और न उसमें अपनी तबीयत से काम करने की कोई स्वतन्त्रता ही रहती है। वे कहते हैं कि मनुष्य जन्म से ही अच्छा या बुरा होता है और प्रकृति के हाथ का एक मूक खिलौना रहता है।

यह बात सच है कि मनुष्य अपने विचारों के हाथों का एक खिलौना बना रहता है, उसमें उन्हीं विचारों की शक्ति काम करती रहती है किन्तु वे विचार जड़वत नहीं होते। यदि वह चाहे तो उन्हें नवीन नवीन दिशाओं की ओर ले जा सकता है। कहने का मतलब यह है कि यदि वह पक्का इरादा कर ले तो वह अपनी आदतों को एकदम बदल सकता है। यह बात ठीक है कि वह एक विशेष चरित्र लेकर पैदा हुआ है जिसको उसने अनेक जन्मों में परिश्रम करके अपने

जिस कानून से उसने अपने को बन्धन में डाला है उसी कान
से वह अपने को उस बन्धन से मुक्त भी कर सकता है। इ
बात की सच्चाई को जानने के लिये उसे करके देखना होगा
उसे विचार पूर्वक परिश्रम के साथ पुरानी विचारधारा औ
काम करने का पुराना रवैय्या बदलना पड़ेगा और न
विचारधारा और काम करने का नवीन रवैय्या अपन
पड़ेगा। इस परिवर्तन को यदि वह एक दिन, एक सप्त
एक महीना, एक वर्ष या पाँच वर्ष में भी न ला सके तो
न तो घबड़ाना चाहिये और न निराश होना चाहिये। पु
आदतों को तोड़कर उनके स्थान में नवीन आदतों के लाने
उसे काफी समय लगेगा किन्तु परिवर्तन होगा अवश्य, इ
किंचितमात्र भी शका नहीं है। उसे अपने प्रयत्न में वे
चिपट कर लगे रहना चाहिये, कभी छोड़ना न चाहिये।
में उसे सफलता अवश्य मिलेगी। यदि एक ऐसी आदत,
जिसे आप नहीं चाहते और जिसका प्रभाव बुरा पड़ता है, जड़
पकड़ सकती है तो एक अच्छी आदत भी, जिसका प्रभाव
अच्छा पड़ता है, आसानी से जड़ पकड़ सकती है। जब तक
मनुष्य अपने को निर्बल समझता रहता है तब तक वह नुकसान
पहुँचाने वाली और दुख देनेवाली अपनी भीतरी कमियों को
सकता। यदि मनुष्य की कोई बुरी आदत पड़ गई

है और इनके विपरीत विचारों से वह अपने को मुक्त करता है। बदला हुआ मन मनुष्य के चरित्र को, आदतों को और जीवन को बदल देता है। मनुष्य स्वयं अपना मुक्तिदाता है। जिस प्रकार वह अपनी गुलामी लाया है इसी प्रकार वह अपनी मुक्ति भी ला सकता है। युगों से वह अपनी मुक्ति के लिये बाहरी मुक्तिदाता का मुँह देखता रहा है। इसी से वह अभी तक बन्धन में पड़ा हुआ है। बड़ा मुक्तिदाता तो अपने भीतर बैठा हुआ है। वह सचाई का देवता है। सचाई का देवता भलाई का भी देवता हुआ करता है। वह ही मनुष्य वास्तव में भलाई का देवता है जो अच्छे-अच्छे विचार मन में लाता है जिनसे नेक काम होते हैं।

मनुष्य को किसी दूसरी शक्ति ने नहीं बाँध रक्खा है। वह अपने दूषित विचारों से ही बँधा हुआ है जिनसे वह अपने को मुक्त कर सकता है। उसका सबसे बड़ा शत्रु यह विचार है: 'मैं उन्नति नहीं कर सकता,' 'मैं अपनी आदत को नहीं बदल सकता,' 'मैं अपने को संयम में नहीं रख सकता,' और 'मैं अपने गुनाहों को नहीं छोड़ सकता।' इन 'नकारात्मक' विचारों का कोई मूर्तिमान अस्तित्व नहीं होता। वे केवल मन में तरंगें हैं

पैदा करने वाले 'नकारात्मक' विचार

४—शरीर के रोग

संसार में लाखों मशहूर संस्थायें हैं जहाँ शरीर के रोग अच्छे किये जाते हैं। इससे यह बात स्पष्ट है कि आजकल शारीरिक व्याधि कितनी बढ़ी हुई है। इसी प्रकार मनुष्य के मन भी दूषित हो रहे हैं जिन्हें ठीक करने के लिये लाखों धार्मिक संस्थायें संसार में काम कर रही हैं। प्रत्येक संस्था अपने ढंग से शरीर को स्वस्थ बनाने की चेष्टा कर रही है किन्तु तब भी शरीर की बीमारी दूर नहीं हो रही है। उसी प्रकार सारे धर्म भी मन को पवित्र बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं किन्तु मन का दोष दूर होता दिखलाई नहीं पड़ता।

रोग शरीर के नस-नस में इतनी गहराई तक पार और दुख की तरह प्रवेश कर गये हैं कि वे दवाओं से शान्त नहीं हो रहे हैं। किन्तु यह न भूलना चाहिये कि हमारे रोगों का वास्तविक कारण हमारा दूषित मन है। मैं यह नहीं कहने का दावा भरता कि भौतिक कारणों से रोग उत्पन्न ही नहीं होते। भौतिक कारण बहुत बातों में रोग उत्पन्न करते हैं। गन्दे वायुमण्डल में कीटाणु अधिक उत्पन्न होते हैं। उनसे बहुतों की मृत्यु हो जाती है। गन्दगी वास्तव में हमारे नैतिक पतन की निशानी है

गन्दगी हमारे मन की दशा का द्योतक है, यानी हमारा मन गन्दा था इसलिये एक स्थान में गन्दगी हुई। अतएव जिसे हम रोग कहते हैं वह गन्दगी से पैदा होता है। उसका बहुत कुछ सम्बन्ध मन से हुआ, मन से हम इस का हम नाश करते हैं। आजकल के शिक्षित समाज के मनुष्य का मन बड़ी बड़ी इच्छाओं से अशान्त हो रहा है। जिसका परिणाम यह होता है कि वह अपने शरीर से असन्तुष्ट रहता और भला सा रहता है इसलिये उसका शरीर गन्दगी से भर जाता है। उसका मन भी अशान्त रहता है और फलस्वरूप उसका शरीर भी रोग ग्रसित रहता है। जानवर जंगली होते हैं। उनके सामने सभ्यता का कोई प्रश्न ही नहीं रहता। अतएव वे मन से शान्त रहते हैं और मन के शान्त रहने से उन्हें कोई रोग नहीं होता। वे प्रकृति के साथ अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उनकी कोई नैतिक जिम्मेदारी नहीं होती। उन्हें पाप और पुण्य का कोई विचार ही नहीं रहता। वे दिल को हिला देनेवाले कष्ट, दुख और निराशा से मुक्त रहते हैं जो मनुष्यों को काफी परेशान करके उनके जीवन के सुख को नष्ट करते रहते हैं। मनुष्य इन परेशानियों से तभी बचता है जब वह अपने मन को संसार की झंझटों से हटा कर ईश्वर की ओर सच्चे दिल से लगाता है। उस समय उसके सारे कष्ट दूर हो जाते हैं और उसे

अजीब शान्ति का अनुभव होता है। इस प्रकार जब उसका मन शान्त हो जाता है तो उसका शरीर भी स्वस्थ हो जाता है और वह पूर्ण स्वस्थ होने का अनुभव करता है।

शरीर में मन का प्रतिबिम्ब पड़ता है। शरीर से ही हमें मन के भीतर छिपे हुये विचारों की जानकारी होती है। शरीर मन के आधीन रहता है। संभव है भविष्य के वैज्ञानिक इस बात का पूर्णरूप से निश्चय कर दें कि शरीर की प्रत्येक बीमारी मन के दूषित होने से ही पैदा होती है।

मन की शान्ति अथवा नैतिकता के बल पर ही वास्तव में मनुष्य स्वस्थ रहता है। मन की शान्ति कोई दवा की शीशी नहीं है कि एकदम उसे पी लिया और रोग दूर हो गया। मन की शान्ति तो शरीर को निरोग करने में धीरे-धीरे अपना काम करती है। यदि मनुष्य का मन धीरे-धीरे शान्त होता जाय, यदि धर्म की उसकी प्रवृत्ति बढ़ती जाय तो हमारे शान्त और धार्मिक मन का प्रभाव धीरे-धीरे शरीर के रोग को दूर करने में अपना काम करता रहेगा। यदि पूर्ण स्वास्थ्य हमें न भी मिले तो हमारा रोग हमें अधिक परेशान न कर सकेगा क्योंकि उस रोग की तीक्ष्णता को हमारे निर्दोष और दृढ़ मन ने निकाल कर बाहर फेंक दिया है।

यदि मनुष्य ने अपने मन को ठीक करना अथवा अपने आत्मिक बल को बढ़ाना अभी हाल में ही शुरू किया है और यदि वह बीमार पड़ जाता है तो यह जरूरी नहीं है कि उसकी बीमारी तुरन्त ही अच्छी हो जाय।

कुछ समय तक तो पहले की जमी हुई शरीर की गन्दगी भारी मात्रा में निकल सकती है और रोग भी बढ़ सकता है किन्तु इससे घबड़ाना नहीं चाहिये। जिस प्रकार मनुष्य जब मन को निर्दोष बनाना शुरू करता है तो, कुछ असाधारण मनुष्यों को छोड़कर और लोगों को एकदम शान्ति नहीं मिल जाती। उन्हें नाना प्रकार के कष्ट पहले सहना पड़ता है और तब शान्ति मिलती है। उसी प्रकार, कुछ असाधारण मनुष्यों को छोड़कर और लोगों को एकदम अच्छी तन्दुरुस्ती नहीं मिल जाती। निर्दोष मन और अच्छी तन्दुरुस्ती को पाने के लिये समय की जरूरत होती है। यदि तुरन्त अच्छा स्वास्थ्य न मिले तो निकट भविष्य में तो अवश्य ही मिल जायगा।

यदि मन पुष्ट हुआ तो तन्दुरुस्ती का प्रश्न ही गौण हो जाता है। उसको वह महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिलता जो शुरू-शुरू में बहुतेरे लोग उसे दिया करते हैं। यदि बीमारी दूर न हुई तो पुष्ट मन वाला रोगी बराबर हँसता रहेगा और उस पर उस बीमारी का कोई प्रभाव ही नहीं पड़ेगा। बीमारी के रहते

। स्वस्थ मन से ही वास्तव में स्वस्थ शरीर मनुष्य को मिलता है।

अस्वस्थ मन अस्वस्थ शरीर से कहीं अधिक शोचनीय होता है। इससे शरीर का रोग बढ़ता है। एक दुर्बल मन वाले मनुष्य की दशा एक रुग्ण शरीर वाले से कहीं अधिक दुखदायक होती है। ऐसे रोगी भी हैं (जिनको प्रत्येक डाक्टर जानता है) जिनके मन को यदि पुष्ट, सुखी और उदार बना दिया जाय तो उनका रोग दूर हो सकता है।

यदि तुम अपने को मनुष्य कहते हो तो मन, शरीर और भोजन सम्बन्धी सब कमजोर विचारों को दूर कर दो। यदि मनुष्य यह समझता है कि मैं पौष्टिक भोजन करता हूँ और तब भी मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता तो उसे अपने मन को पुष्ट करके अपने स्वास्थ्य को ठीक करना चाहिये। यदि मनुष्य समझता है कि उसका स्वास्थ्य एक विशेष प्रकार के भोजन से ठीक रहता है जो लगभग हरेक कुटुम्ब को नसीब नहीं होता तो वह अपने पास रोग को बुलाता है। यदि शाकाहारी कहता है कि आलू खाने से मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, केला के खाने से अपच होता है, सेब खाने से अम्लता पैदा होती है, दाल मेरे लिये विषवत् है, तरकारियों के खाने से मुझे हानि पहुँ[illegible] और इसी प्रकार दूसरी वस्तुएँ भी मेरे स्वास्थ्य को खराब

तो जिस उद्देश्य को सामने रखकर यह ऐसा कह रहा है उसी को यह लाञ्छित कर रहा है। साथ ही ये बलवान मांसाहारी उनका उपहास भी करने लगते हैं जो मस्त रहते हैं और भोजन की किसी प्रकार छानबीन उपरोक्त ढंग से नहीं करते। जो मनुष्य यह समझता है कि भूख लगने पर फलों को खाने से स्वास्थ्य को हानि पहुंचती है वह भोजन के उद्देश्य को नहीं समझता। भोजन करने का उद्देश्य शरीर को पुष्ट करना और जीवित रखना है, उसको निर्बल बनाना और नष्ट करना नहीं है। आश्चर्य की बात तो यह है कि उपरोक्त झूठे भ्रम में न मालूम कितने मनुष्य पड़े हुये हैं जो भोजन द्वारा स्वास्थ्य की वृद्धि करना चाहते हैं। इससे उनके शरीर को भारी हानि पहुँचती है। उनकी यह धारणा कितनी गलत है कि सादा, शुद्ध और प्राकृतिक भोजन उनको जीवन न देकर मृत्यु की ओर ले जाता है। एक भोजन के विशेषज्ञ ने मुझसे एक बार कहा था कि रोटी खाने से मैं बीमार पड़ गया और मैंने देखा है कि इसी प्रकार रोटी खाने से और भी हजारों मनुष्य बीमार पड़ गये हैं। तुर्रा यह कि उसने ज्यादा तादाद में रोटी भी नहीं खाई थी और उसकी रोटी मेवा भरकर मोटे आटे की घर ही में बनाई गई थी। अब तक जो पाप हमने किया है उसे अब हम धो डालें और ऐसे-ऐसे वाहियात विचारों को अपने मन से

नैतिकता और प्रकाश दिखलाई पड़ता है। उनमें ही हमें वह ज्ञान मिलता है जिससे जीवन की कमज़ोरी हमें मालूम होती है और हमें जीवन की हरेक पहलू में व्यवस्था लाने का बल मिलता है और जीवन की सब बातें हमारी ओर उसी तरह खिंच आती है जैसे चुम्बक की ओर लोहे के टुकड़े खिंच जाते हैं।

शरीर को निरोग करने की अपेक्षा हमें उससे बेपरवाह हो जाना अच्छा है। उसकी परेशानियों से अपने को परेशानी नहीं करनी चाहिये बल्कि शरीर पर अपना पूरा अधिकार कर लेना चाहिये। उसे न तो बुरा-भला कहना चाहिये और न उससे किसी लम्पट कला का काम लेना चाहिये। उसे नैतिकता के ऊपर भी नहीं रखना चाहिये। उसे अपने अनुशासन में रखकर आनन्द का सीमित उपभोग करना चाहिये। उसकी तकलीफों से घबड़ाना नहीं चाहिये। डाक्टरों की दवा की अपेक्षा शरीर को अपने नैतिक बल और शुद्ध मन द्वारा स्वस्थ रखना कहीं अच्छा है क्योंकि इससे हमको चिरकाल तक आध्यात्मिक बल और मानसिक शान्ति मिलती है।

———

५—निर्धनता

हर युग में बहुत से महान् पुरुषों ने अपने ऊँचे उद्देश्यों की पूर्ति के लिये धन को तिलांजलि दे रक्खी थी। तो फिर निर्धनता ऐसी भयानक आपत्ति क्यों मानी जाती है? क्या बात है कि जिस निर्धनता को इन महान् पुरुषों ने एक वरदान के रूप में माना था उसे आजकल का मनुष्य समुदाय ईश्वरीय दंड और महामारी समझता है। इसका उत्तर बिल्कुल सरल है। महान पुरुषों में निर्धनता मनुष्य की महानता समझी जाती थी और उसके कारण मनुष्य के चरित्र की सारी बुराइयाँ दूर हो जाती थी और वह नेक, सुन्दर और चरित्रवान समझा जाता था। लोग धन और पद से भी निर्धनता की अधिक इज्जत करते थे यहाँ तक कि चरित्रवान सन्यासियों को देखकर हजारों मनुष्य उनकी नकल करके उन्हीं का सा जीवन व्यतीत करते थे। आजकल तो सभ्य शहरों में निर्धन को लोग कमीना, शपथखाने और शराब पीने वालों की तरह अत्यन्त घृणास्पद, गन्दा, सुस्त बेईमान और पापी समझते हैं। निर्धनता और पाप में से किसका दरजा ऊँचा है? सभी कहेंगे कि पाप निर्धनता से अधिक बुरा है। निर्धनता से पाप की भावना निकाल दीजिये तो उसकी

हक भाड़ जायगी। निर्धनता जो अभी तक एक बहुत बड़ी अपमान की चीज समझी जाती थी अब सुन्दर दिखलाई पड़ने लगेगी और वह आपके लिये लाभदायक होगी। कनफ्यूशियस (Confucius) येनहुई (Yen hwice) नामक अपने निर्धन शिष्य को धनी शिष्यों से अधिक मानता था। उसे वह बहुत ही बड़ा चरित्रवान समझता था यद्यपि वह बहुत ही निर्धन था और चावल और पानी पर अपना गुजर एक छोटी सी कुटी में करता था। वह अपनी निर्धनता के बारे में चूँ तक नहीं करता था। इस निर्धनता से दूसरों का दिल दहल उठ सकता था किन्तु वह अपनी शान्ति को भंग नहीं होने देता था। निर्धनता एक चरित्रवान पुरुष को निरुत्साहित नहीं कर सकती बल्कि उसे एक अच्छे पद पर बैठा सकती है। निर्धनता के ही कारण येनहुई के गुणों का अधिक प्रकाश हो रहा था। वह एक अप्रधान स्थान में पड़े हुये हीरे की तरह चमक रहा था।

समाज सुधारक प्रायः कहा करते हैं कि निर्धनता पाप की जननी है किन्तु वे ही सुधारक यह भी कहते हैं कि धन के कारण भी लोग दुराचारी होते हैं। कारण से कार्य होता है। अतएव यदि धन की प्रचुरता दुराचार का कारण होती और निर्धनता अपमान का कारण होती तो प्रत्येक धनी दुराचारी होता और प्रत्येक निर्धन को अपमान सहना पड़ता।

पापी तो हर हालत में पाप करता है चाहे वह धनी
। निर्धन हो अथवा दोनों के बीच की श्रेणी का हो। उ
कार धर्मात्मा भलाई ही करता है चाहे वह कैसी भी हैसि
ा क्यों न हो। जो पाप भीतर छिपा हुआ है वह अ
नुकूल परिस्थितियों को पाकर आपसे आप प्रगट होता है।
रिस्थितियाँ उसको पैदा नहीं कर सकतीं।

अपनी आर्थिक दशा से असन्तुष्ट रहना एक बात है और
र्धन होना दूसरी बात है। बहुतों की आय एक वर्ष में सैकड़ों
ाउण्ड की और बहुतों की हजारों पाउण्ड की होती है और
नको काम भी कम करना पड़ता है तब भी वे अपने को
र्धन ही समझते हैं। धन की यह हाविश उनके लिये
र्धनता का कारण ही बनती है। वास्तव में उनकी परेशानी
ा कारण निर्धनता नहीं है बल्कि अधिक धन संचय करने
ा लोभ है। वे दुखी निर्धनता के कारण नहीं हैं बल्कि और
धिक धन पैदा करने के लोभ के कारण दुखी हैं। निर्धनता
हुत करके मन में होती है, धन में नहीं। जब तक मनुष्य के
न में अधिक धन पैदा करने की लालसा बनी रहेगी तब तक
ह निर्धन ही रहेगा। इस अर्थ में वह निर्धन है क्योंकि लोभ
न की निर्धनता से होता है। एक कंजूस करोड़पती भले ही हो
केन्तु वह इस अवस्था में भी उसी प्रकार निर्धन ही रहता है

जिस प्रकार वह उस समय निर्धन था जब उसके पास एक कानी कौड़ी भी नहीं थी।

न मालूम कितने लोग निर्धनता के साथ अपमान सहते हुये अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उनको अपनी इस गिरी हुई अवस्था में ही सन्तोष रहता है। उनका इस प्रकार गन्दगी, अव्यवस्था और आलस्य के साथ रहना, सुअर का विलासी जीवन व्यतीत करना; गन्दे वायु-मंडल में गाली बकना और गन्दे-गन्दे विचार मन में लाना मुझे बहुत खटकता है। यह खराबी अथवा निर्धनता दूषित मन से पैदा हुई है और इस समस्या को हल करने का उपाय यही है कि हम बाहर देखने की अपेक्षा अपने भीतर देखें। यदि मनुष्य भीतर से स्वच्छ और पवित्र हो जाय तो फिर वह बाहर गन्दे स्थान में नहीं रह सकता और न अपमान सह सकता है। अपने मन को ठीक करके तब मनुष्य अपने घर को भी ठीक कर सकता है। जब वह अपने पास के चारों ओर के वायु-मंडल को ठीक कर लेता है तब सब लोग समझेंगे और वह भी समझेगा कि अब मैं ठीक रास्ते पर जा रहा हूं। उसका बदला हुआ मन उसके बदले हुये जीवन में दिखलाई पड़ता है।

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो समझदार हैं और जिनका समाज में आदर है किन्तु तब भी वे अपने को निर्धन समझे हुये हैं

वे निर्धन बने रहना ही पसन्द करते हैं क्योंकि वे सन्तुष्ट
निश्च और सुखी रहते हैं और किसी वस्तु की इच्छा नहीं क
उनमें से जो अपनी वर्तमान स्थिति में असन्तुष्ट हैं और
पद प्राप्त करने की इच्छा करते हैं उनको अपनी निर्धन
काल में अपने गुणों और शारीरिक बल की वृद्धि क
चाहिये। अपनी उन्नति करके और अपने कर्तव्यों का ठीक
पालन करके जिस पूर्ण और ऊँचे जीवन की वे इच्छा करते
वह उन्हें मिल सकता है।

कर्तव्यनिष्ठा

दूर कर सकता है ·

वह अपनी समृद्धि करके और अपने को प्रभावशाली
गुणी बनाकर अपने जीवन को पूर्ण सफल बना सकता है।
कर्तव्यनिष्ठा पर यदि गहराई से विचार किया जाय तो
मालूम किया जा सकता है कि उसका सम्बन्ध जीवन के स
ऊँचे-ऊँचे गुणों से होता है। उससे शारीरिक बल मिलता
डटकर परिश्रम होता है, जीवन के प्रत्येक काम में ध्यान देने
आदत पड़ती है, और हममें एकाग्रता, साहस, सच्चा
दृढ़ता और स्वावलम्बन की वृद्धि होती है। और कहाँ तक क
कर्तव्यनिष्ठा से हममें आत्म-त्याग की भावना भी बढ़ती है
तमाम वास्तविक सफलताओं की कुन्जी है। एक अत्यन्त सफ

नुष्य से किसी ने पूछा, "आपकी सफलता का क्या रहस्य है ?" सने उत्तर दिया, "मैं प्रातःकाल ६ बजे उठ जाता हूँ और दिन भर अपने काम में लगा रहता हूँ, "उसी मनुष्य को सफलता और आदर मिलता है और वही मनुष्य अपने को भाग्यशाली भी बना सकता है जो घोर परिश्रम के साथ अपना काम करता है और दूसरों के काम में स्वप्न में भी विघ्न नहीं डालता।

लोग जोर देकर कहते हैं कि जो अत्यन्त निर्धन हैं—जैसे मिल और कारखाने के मजदूर—उनको किसी विशेष काम करने का अवसर नहीं मिलता। यह बात गलत है। किसी विशेष काम करने का उपयुक्त समय और सुअवसर सभी मनुष्य की पहुँच में होता है। जिन निर्धन मनुष्यों का ऊपर उल्लेख किया गया है। जो इतने सन्तुष्ट हैं कि जहाँ वे हैं वहीं रहना चाहते हैं उनको वहीं अपने कारखाने में हमेशा परिश्रम से काम करना चाहिये और अपने कुटुम्ब के साथ हमेशा प्रसन्नता के साथ अपना जीवन व्यतीत करना चाहिये किन्तु जो समझते हैं कि हम अपने वर्तमान काम से ऊँचा काम कर सकते हैं उनको चाहिये कि वे अपने छुट्टी के समय में अपने को ऊँचे काम के लिये योग्य बनावें। जो निर्धन मनुष्य परिश्रमी होते हैं वे अपने समय की बचत भी कर लेते हैं। जो नवयुवक अपनी नि .

बाहर निकलना चाहता है उसे शराब पीना, तम्बाकू पीना, व्यभिचार करना, रात में देर तक नाच गाने और सैर सपाटे और लबों में बैठना जिनमें वह अभी तक फँसा हुआ है छोड़ देना चाहिये और सायंकाल का समय उसे अपने को शिक्षित करने में बिताना चाहिये जो उसकी उन्नति के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इस विधि को अपनाकर धनी और निर्धनी दोनों वर्गों के मनुष्यों ने अपनी महान उन्नति कर ली है। इतिहास इसका साक्षी है। इससे यह बात सिद्ध होती है, जैसा बार-बार दोहराया गया है, कि बचत के समय को आत्मोन्नति में लगाना चाहिये, उसे यों ही व्यर्थ न खो देना चाहिये। जो अपनी वर्तमान स्थिति से असन्तुष्ट हैं और अपनी भविष्य की उन्नति करना चाहते हैं उनको समझ लेना चाहिये कि जितना ही अधिक ये निर्धन हों उतना ही अधिक परिश्रम और साहस के साथ वे अपनी उन्नति के लिये काम करें।

निर्धनता अभिशाप है या नहीं, यह बात मनुष्य के चरित्र और उसकी मानसिक दशा पर निर्भर है। इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि धन मनुष्य के लिये अभिशाप है अथवा नहीं। महात्मा टालस्टाय अत्यन्त धनी होते हुए भी [illegible] कारण कराह रहे थे और उसके नीचे दबे जा रहे [illegible] लिये धन अभिशाप था। वह निर्धन होने की

उसी प्रकार इच्छा करते थे जिस प्रकार धनी होने की इच्छा एक कजूस करता है। निधनता हमेशा दुखदाई होती है। यह निर्धन को अपमानित करती है और समाज पर भी अपना बुरा प्रभाव डालती है। तर्क दृष्टि से गहराई के साथ यदि हम निर्धनता का विश्लेषण करें तो हमें यही मालूम होता है कि उसकी जिम्मेदारी निर्धन मनुष्य के ही ऊपर है। जब हमारे समाज सुधारक निर्धनता की उसी प्रकार खिल्ली उड़ाते हैं जिस प्रकार धन की। जब वे मनुष्य के गन्दे रहन-सहन को समाप्त कर देने की उसी प्रकार बातचीत करते हैं जिस प्रकार वे कम वेतन का अन्त करना चाहते हैं तो हम आशा है कि ये लोग कमीनी निर्धनता को भी समाप्त कर देंगे जो हमारी सभ्यता का कोढ़ हो रही है। इस प्रकार की निर्धनता के समाप्त होने के लिये यह जरूरी है कि मनुष्य का मन भी एकदम बदल जाय। जब मनुष्य के मन से लोभ और स्वार्थ निकल जायगा, जब शराब का पीना, भ्रष्टाचार, आलस्य और विलासिता संसार से हमेशा के लिये हट जायगी, तब निर्धन और धनी की दशा मिट जायगी और मनुष्य अपने कर्तव्य का प्रसन्नता के साथ पूरी तरह से पालन करेंगे जिसको (थोड़े से चरित्रवान पुरुषों को छोड़कर) अभी वे नहीं कर रहे हैं। उस समय सभी लोग स्वाभिमान और शान्ति के साथ अपने परिश्रम के फल का उपभोग कर सकेंगे।

———

अपने जीवन पर शासन करने लगे। मूर्ख लोग समझते हैं कि हम और सब लोगों को जीत सकते हैं केवल अपने को नहीं जीत सकते और इस प्रकार वे बाहरी परिस्थितियों को सुधार कर अपने लिये और दूसरों के लिये सुख प्राप्त करने की इच्छा करते हैं। केवल बाहरी चीजों के बल पर और उनको कुछ घटा बढ़ाकर मनुष्यों को चिरस्थायी सुख और विवेक नहीं मिल सकता। मलहम पट्टी लगाने और परिचर्या करने से एक रोग ग्रसित शरीर तन्दुरुस्त और सुखी नहीं हो सकता। बुद्धिमानों को मालूम है कि जब तक मनुष्य अपने मन पर विजय नहीं प्राप्त कर लेता तब तक और किसी प्रकार की विजय कोई विजय नहीं होती। जब वह अपने मन को अपने अधीन कर लेता है तब बाहरी चीजें आपसे आप उसके अधीन हो जाती हैं और उसके भीतर से फिर आनन्द का सोता आपसे-आप बाहर निकलने लगता है क्योंकि उसको ईश्वर का बल मिलता है और उसके कारण उसके चरित्र में शान्ति आ जाती है। उसके पाप धो जाते हैं और काम, क्रोध आदि विकारों के हट जाने से उसका शरीर भी बलवान हो जाता है।

मनुष्य अपने मन पर शासन कर सकता है और अपने जीवन का स्वामी बन सकता है। जब तक वह अपने मन को अपने वश में नहीं करता तब तक उसका जीवन दुखी और

अपूर्ण रहता है। जिन मानसिक शक्तियां से उसका स्वभाव बन गया है ये ही शक्तियाँ उसका आध्यात्मिक क्षेत्र होती हैं। शरीर स्वयं आध्यात्मिक क्षेत्र नहीं बना सकता। शरीर पर शासन करने यानी काम, क्रोध आदि को रोकने का सम्बन्ध मनुष्य के मन से है।

जो भीतरी विकार हमारी आध्यात्मिकता में बाधा डालते हैं उनको अपने वश में करना, उनको सुधारना, और उन एकदम निर्मूल कर देने का एक बहुत ही महत्वपूर्ण काम है है जिसे सब लोगों को आगे या पीछे अवश्य करना ही पड़ेगा बहुत समय तक मनुष्य अपने को बाहरी चीजों का दास समझत है किन्तु एक दिन उसके जीवन में ऐसा आता है जब उसर आध्यात्मिक आँखें खुलती हैं और तब वह सोचता है कि अभी तक अपने ही असंयमित और अपवित्र मन का दार रहा हूँ। उस दिन वह फिर उठ खड़ा होता है और कूदक मन पर सवार हो जाता है और फिर वह अपनी वासनाओं क दास नहीं रह जाता। वह उन पर उसी प्रकार शासन करता है जिस प्रकार एक राजा अपनी प्रजा पर शासन करता है। बिना मन को अपने वश में किये अभी तक वह एक दीन भिखारी और गुलाम की तरह दर-दर भटकता था किन्तु अब वह समय समाप्त होने लगा है इसलिये वह अपने मन को भीतरी

वासनाओं को खतम करके उसको शान्ति के मार्ग की ओर ले जा रहा है।

इस प्रकार मन को वश में करके और अपने जन्मजात आध्यात्मिक अधिकार को प्राप्त करके वह सब युगों के उन महात्माओं के बीच में प्रवेश करता है जिन्होंने अज्ञान और मानसिक अशान्ति को दूर करके और अपने शरीर को पूर्णरूपेण अपने वश में करके स्वर्ग की बादशाहत में प्रवेश किया है।

अपूर्ण रहता है। जिन मानसिक शक्तियां से उसका स्वभाव बन गया है ये ही शक्तियाँ उसका आध्यात्मिक क्षेत्र होती हैं। शरीर स्वयं आध्यात्मिक क्षेत्र नहीं बना सकता। शरीर पर शासन करने वाली काम, क्रोध आदि को रोकने का सम्बन्ध मनुष्य के मन से है।

जो भीतरी विकार हमारी आध्यात्मिकता में बाधा डालते हैं उनका अपने वश में करना, उनको सुधारना, और उनको एकदम निर्मूल कर देने का एक बहुत ही महत्वपूर्ण काम होता है जिसे सब लोगों को आगे या पीछे अवश्य करना ही पड़ेगा। बहुत समय तक मनुष्य अपने को बाहरी चीजों का दास समझता है किन्तु एक दिन उसके जीवन में ऐसा आता है जब उसकी आध्यात्मिक आँखें खुलती हैं और तब वह सोचता है कि मैं अभी तक अपने ही असंयमित और अपवित्र मन का दास रहा हूँ। उस दिन वह फिर उठ खड़ा होता है और कूदकर मन पर सवार हो जाता है और फिर वह अपनी वासनाओं का दास नहीं रह जाता। वह उन पर उसी प्रकार शासन करता है जिस प्रकार एक राजा अपनी प्रजा पर शासन करता है। जि[illegible] मन को अपने वश में किये अभी तक वह एक दीन भि[illegible] और गुलाम की तरह दर-दर [illegible] समाप्त होने लगा है

के लिये पैदा किया गया है। संसार के जितने आध्यात्मिक नियम हैं वे सब नेक मनुष्यों के लिये बनाये गये हैं जो उनकी रक्षा करते हैं और उन्हों के बल पर जीवित रखते हैं। बुरे लोगों के लिये कोई आध्यात्मिक नियम नहीं होते। उनका स्वभाव अपने को दुखी करना और अपना विनाश करना ही होता है।

आजकल की शिक्षा में ऐसा कोई साधन नहीं है जिसके द्वारा प्रत्यक्ष में मनुष्य अपने चरित्र को सुधार सके और अपनी बुराइयों को हटा सके। हमारे धार्मिक गुरुओं को भी न तो इस बात की योग्यता है और न उनमें रुचि है कि वे लोगों के चरित्र को सुधार सकें अथवा उनकी बुराइयों को दूर कर सकें। मनुष्य जब संसार के ठोकर खाता है तब बिना किसी की मदद के अप्रत्यक्ष रूप में उसमें नैतिकता की वृद्धि होती है। वह समय आयेगा जब शिक्षा में नवयुवकों के चरित्र सुधार में विशेष जोर दिया जायगा और कोई ऐसा मनुष्य हमारा धर्म गुरू न हो सकेगा जिसमें आत्मसंयम न हो, जो ईमानदार न हो और जिसका आचरण शुद्ध न हो। सर्वगुण सम्पन्न और ऊँचे चरित्र का गुरू ही हमारे चरित्र को सुधार सकेगा और धर्म का स्तम्भ बन सकेगा।

मेरा अपना मत यही है कि मनुष्य अपनी बुराइयों पर प्राप्त करे, पापों को नष्ट करे और सन्मार्ग पर चलकर

७—अपनी बुराइयों पर विजय प्राप्त करना, उनके सामने सिर नहीं झुकाना

जिसने अपने मन को अपने वश में कर लेने का बीड़ा उठाया है वह अपनी बुराइयों के सामने सिर नहीं झुकाता, उनको अपने वश में करता है। यदि वह किसी के सामने सिर झुकाता है तो सत् गुणों के सामने। बुराई के सामने सिर झुकाना मनुष्य की सबसे निकृष्ट कमजोरी है और सत् गुणों के सामने सिर झुकाना सबसे बड़ी शक्ति है। पाप, दुख, अज्ञान, और कष्ट के सामने सिर झुकाने का यह अर्थ हुआ कि मैं हाथ पैर ढीले कर रहा हूँ, मै हार गया हूँ, जीवन एक कुकर्म है और उसकी गुलामी मैं स्वीकार करता हूँ। इस प्रकार बुराई के सामने सिर झुकाना धर्म के विरुद्ध है। इस प्रकार बुराई के सामने सिर झुकाने से मनुष्य का जीवन कष्टमय होता है, उसमें प्रलोभनों को रोकने की शक्ति नहीं रह जाती, और उसमें वह आनन्द देखने को नहीं मिलता जो सुकर्मों द्वारा वश में किये हुये मन से मनुष्य को मिलता है।

बुराइयों से हार कर दुखी रहने के लिये नहीं पैदा । यह उन पर विजय प्राप्त करने और सुखी रहने

लिये पैदा किया गया है। संसार के जितने आध्यात्मिक नियम हैं वे सब नेक मनुष्यों के लिये बनाये गये हैं जो उनकी रक्षा करते हैं और उन्हीं के बल पर जीवित रहते हैं। बुरे लोगों के लिये कोई आध्यात्मिक नियम नहीं होते। उनका स्वभाव अपने को दुखी करना और अपना विनाश करना ही होता है।

आजकल की शिक्षा में ऐसा कोई साधन नहीं है जिसके द्वारा प्रत्यक्ष में मनुष्य अपने चरित्र को सुधार सके और अपनी बुराइयों को हटा सके। हमारे धार्मिक गुरुओं को भी न तो इस बात की योग्यता है और न उनमें शक्ति है कि वे लोगों के चरित्र को सुधार सकें अथवा उनकी बुराइयों को दूर कर सकें। मनुष्य जब संसार के ठोकर खाता है तब बिना किसी की मदद के स्वतन्त्र रूप से उसमें नैतिकता की वृद्धि होती है। वह समय आवेगा जब शिक्षा में नवयुवकों के चरित्र सुधार में विशेष जोर दिया जायगा और कोई ऐसा मनुष्य हमारा धर्म गुरु न हो सकेगा जिसमें आत्मसंयम न हो, जो ईमानदार न हो और जिसका आचरण शुद्ध न हो। सर्वगुण सम्पन्न और ऊँचे चरित्र का गुरु ही हमारे चरित्र को सुधार सकेगा और धर्म का बन सकेगा।

मेरा अपना मत यही है कि मनुष्य अपनी बुराइयों पर संयम करें, पापों को नष्ट करें और सन्मार्ग पर चलकर।

स्थायी शान्ति प्राप्त करे। सब युगों के धर्माचार्यों का भी यही मत रहा है। मूर्खों ने अपनी अज्ञानता के कारण इन धर्माचार्यों के मतों को छिपा रक्खा था और उनका अर्थ मनमानी करते रहे हैं। किन्तु याद रखिये कि जो मैं कहता हूँ वही उनका मत रहा है और भविष्य में जो धर्माचार्य उत्पन्न होंगे उनके भी यही मत रहेंगे। इसे ईश्वर का ही उपदेश समझना चाहिये।

हमें अपनी बाहरी बुराइयों और संसार के कुकर्मियों को शुद्ध नहीं करना है बल्कि हमें अपने भीतरी बुरे विचारों, बुरी वासनाओं और बुरे कर्मों को शुद्ध करना है। जब सब मनुष्यों के हृदय शुद्ध हो जायेंगे तब संसार के लोग पुकार-पुकार कर कहने लगेंगे कि संसार से अब बुराई बिल्कुल उठ गई है। जब सब मनुष्य नेक बन जायेंगे, जब पृथ्वी से बुराई बिल्कुल उठ जायगी, जब पाप और दुख कहीं ढूँढे पर भी नहीं मिलेंगे तब संसार के सारे लोग वास्तव में सुखी हो सकेंगे।

एलेन सीरीज की कुछ उत्कृष्ट पुस्तकें

१. *विचारों का प्रभाव*—यह पुस्तक जेम्स एलेन लिखित As You Thinketh का अनुवाद है। उसमें बताया गया है कि मनुष्य के विचारों में कितनी महान् शक्ति है; उसका कितना प्रभाव हमारे कार्यों पर पड़ता है, एवं उसमें कितना चमत्कार है। मूल्य ॥)

२. मनुष्य ही अपने भाग्य का निर्माता है—यह पुस्तक जेम्स एलेन के Man is the Master of His Mind, Body and Circumstances का अनुवाद है। इसमें बताया गया है कि किस प्रकार हम अपने विचारों और अध्यवसाय से अपने भाग्य को बना सकते हैं। मूल्य ॥=)

३ *गौरवशाली जीवन*—यह जेम्स एलेन लिखित Life Triumphant का अनुवाद है। इसमें बताया गया है कि मनुष्य के विचारों में कितनी महान् शक्ति है, उसका कितना प्रभाव हमारे कार्यों पर पड़ता है, एवं उसमें कितना चमत्कार है। मूल्य ।॥)

४. *नर से नारायण*—यदि हम संसार में प्रेम करें, हमेशा सच्चाई के मार्ग पर चलें और मन तथा हृदय को अपने वश में रक्खें तो यह मानवी दुख दूर किया जा सकता है। यह पुस्तक जेम्स एलेन लिखित From Poverty to Power का अनुवाद है। मूल्य १।) मात्र।

५. *मन की अपार शक्ति*—यह पुस्तक श्रीमती लिली एलेन लिखित Might of the mind का अनुवाद है। इस सुन्दर पुस्तक में बताया गया है कि मनुष्य में भी वह अपार शक्ति है जिसको जान लेने पर वह जैसा चाहे वैसा बन सकता है। मू० ॥=)

६. *भाग्य पर विजय*—इस पुस्तक में पुरुषार्थ का महत्व दिखलाया गया है। पुरुषार्थी पुरुष चाहे तो भाग्य को भी बदल सकता है। मूल्य लेखक जेम्स एलेन। मूल्य ॥)

७. *हमारे मानसिक शिशु*—इस पुस्तक में भय, अहङ्कार, काम, क्रोध आदि विकारों से छूटने के सुलभ मार्ग बताये गये हैं जिनके अनुसार चल कर मनुष्य अपने जीवन को सुखी बना सकते हैं! यह पुस्तक लिली एलेन लिखित Child of the mind का अनुवाद है। मूल्य ॥=)

८. *जेम्स एलेन की डायरी अथवा दैनिक ध्यान*—इस पुस्तक में जेम्स एलेन ने साल भर के प्रत्येक दिन के अपने पवित्र विचारों को लिपिबद्ध किया है, जिनको पढ़कर पारात्मा भी स्वर्गीय भावनाओं से भर सकता है। इसके एक-एक शब्द में चमत्कार एवं बल भरा है जो हृदय पर अद्भुत प्रभाव डालता है। इस पुस्तक को मँगाकर नित्य पाठ करें। मूल्य १)

९. *मौन की वाटिका में*—श्रीमती लिली एलेन की लिखी हुई "The Garden of Silence" "मौन की वाटिका में" अपने ढग की एक ही पुस्तक है। इस छोटी सी पुस्तक में सरल शब्दों में बतायी हुई बातें हमारे जीवन-पथ में प्रकाश-स्तम्भ के समान हैं। ये प्रकाश-स्तम्भ न केवल उस परमात्मा तक पहुँचने का ही मार्ग नहीं वरन् उस परमात्मा की सन्तानों से हम किस व्यवहार करें, इसका भी ज्ञान कराते हैं। इस ... वाला कभी किसी मानसिक ... । मूल्य सिर्फ ॥)

..., दारागंज, प्रयाग।